■ ऋग्वैदिक काल

ऋग्वैदिक समाज जनजातीय पद्धति पर आधारित था, इसलिए इसमें समानता का भाव प्रबल था। ऋग्वेद में हमें तीन वर्णों की चर्चा मिलती है- पुरोहित, राजन्य एवं सामान्य लोग, परन्तु इस विभाजन का आधार भी 'जन' नहीं, बल्कि 'पेशा' था। पेशे में परिवर्तन के साथ वर्ण में भी परिवर्तन हो जाता था। उदाहरण के लिए, विश्वामित्र राजन्य से पुरोहित हो गए थे। (मौलिक रूप में 'वर्ण' शब्द का अर्थ रंग होता है। ऋग्वेद में आर्य एवं दास, दो वर्णों का जिक्र मिलता है।)

ऋग्वैदिक समाज का मूल आधार परिवार था, जो पितृसत्तात्मक हुआ करता था। परिवार का स्वामी पिता अथवा बड़ा भाई हुआ करता था। इस काल में महिलाओं की स्थिति कुल मिलाकर अच्छी थी। ऋग्वेद में वीर पुत्रों की कामना की गई है, परन्तु पुत्रियों के जन्म को हतोत्साहित नहीं किया गया है। बाल विवाह का प्रचलन नहीं था। सामान्यत: लड़कियों का विवाह 16-17 वर्ष की उम्र में किया जाता था। उन्हें उपनयन तथा शिक्षा का भी अधिकार था। स्त्रियों को कुछ हद तक राजनीतिक अधिकार भी प्राप्त थे। वे पति के साथ यज्ञ में भाग लेती थीं तथा जनजातीय संस्था, सभा, की कार्यवाही में भी हिस्सा लेती थी। इस काल की विदुषी महिलाओं में विश्वारा, घोषा, अपाला, लोपामुद्रा आदि का विवरण मिलता है। ऋग्वेद में रक्त संबंध में विवाह तथा बहुपतिवाद के तत्व भी मिलते हैं।

ऋग्वैदिक आर्य मांसाहारी तथा शाकाहारी दोनों तरीके से भोजन ग्रहण करते थे। ऋग्वेद में नमक का कोई जिक्र नहीं मिलता है। वे 'सोम' नामक एक मादक पदार्थ पीकर आनंदित होते थे।

ऋग्वेद में दासों के साथ-साथ दासियों का विवरण प्राप्त होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि दास व्यवस्था स्थापित थी।

■ उत्तर वैदिक काल

पहली बार उत्तर वैदिक काल में चतुर्वर्ण व्यवस्था का विकास देखा जा सकता है, वैसे इसकी पहली चर्चा ऋग्वेद के दसवें मंडल के पुरुष सूक्त में मिलती है। इसमें मूल पुरुष के चार अंगों से चार वर्णों को निकलता दिखाया गया है। ये वर्ण हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ऊपर के तीन वर्णों को द्विज का दर्जा मिला है। उनसे पृथक शूद्र हैं जिनका काम ऊपर के तीन वर्णों की सेवा करना है।

इस काल में परिवार के मुखिया की शक्ति में वृद्धि हुई। परिवार के अन्य सदस्यों पर उसका नियंत्रण बढ़ गया। इस काल में ऋग्वैदिक काल की तुलना में महिलाओं की दशा में थोड़ी सी गिरावट देखी जा सकती है। पहली बार 'ऐतरेय ब्राह्मण' नामक ग्रंथ में पुत्र को परिवार का रक्षक और पुत्री को दु:ख का कारण बताया गया है। इस काल में महिलाओं का सभा में प्रवेश वर्जित हो गया था, परन्तु अन्य अधिकार बचे रहे थे, जिनमें शिक्षा का अधिकार भी शामिल था।

- **महिलाओं की सामाजिक स्थिति में गिरावट क्यों?**

वैदिक काल में कुल मिलाकर महिलाओं की सामाजिक स्थिति अच्छी रही थी, परन्तु बाद के कालों में उनकी स्थिति गिरती चली गई। इसके निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कारण थे-

1. **उत्पादन में महिलाओं की भागीदारी का कम होता जाना**- वैदिक काल तक परिवार के लोगों को ही कृषि कार्य में लगाया जाता था, परन्तु बुद्ध काल में जब बड़े पैमाने पर कृषि का विकास हुआ, तो दासों और श्रमिकों को खेती में लगाया जाने लगा। इस कारण उत्पादन में महिलाओं की भूमिका कम होती चली गई तथा इससे महिलाओं की सामाजिक दशा में गिरावट आती गई।
2. **वर्ण व्यवस्था का जटिल होना**- वर्ण एवं जाति व्यवस्था सामाजिक विभाजन को प्रदर्शित करती थी। जो वर्ण व्यवस्था में जितना ऊँचा होता था, आर्थिक संसाधन पर उसकी अधिक बेहतर पकड़ होती थी। इसलिए उच्च वर्ण के लोग बड़ी कठोरता से वर्ण और जाति व्यवस्था का संचालन करना चाहते थे, लेकिन इसके सफल संचालन के लिए महिलाओं को पुरुष के कठोर नियंत्रण में लाना आवश्यक माना गया था। इसलिए जैसे-जैसे वर्ण जटिलता बढ़ती गई, महिलाओं की सामाजिक दशा में गिरावट आती गई।

- **गोत्र की अवधारणा**- गोत्र शब्द 'गोष्ठ' से निकला है। इसका अर्थ होता है वह स्थान जहाँ सभी की गायें बाँधी जाती थी। चूँकि वैदिक ऋषियों की गायें एक साथ बाँधी जाती थीं, उन्हें एक 'गोष्ठ' का माना गया और आगे इसी गोष्ठ से गोत्र की परिकल्पना आ गई। आरंभ में गोत्र केवल ब्राह्मणों का होता था। ब्राह्मणों ने अपने ये गोत्र अपने क्षत्रिय एवं वैश्य यजमान को दिए। वैदिक काल में गोत्र बहिर्गमन विवाह का प्रचलन नहीं था, यह (बुद्धकाल) सूत्रकाल में आरम्भ हुआ।

- **आश्रम व्यवस्था**- उत्तर वैदिक समाज की एक अभिनव परिकल्पना थी- आश्रम व्यवस्था। एक वैदिक आर्य के जीवन को चार आश्रमों में बाँटा गया- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास, परन्तु उत्तर वैदिक काल तक तीन आश्रमों की

परिकल्पना विकसित हुई थी, चतुर्थ आश्रम, संन्यास, का विकास परिवर्ती काल में हुआ। आश्रम व्यवस्था के दो घोषित उद्देश्य थे। प्रथम, चार पुरूषार्थों; यथा- अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष को धारण करना। दूसरे, चार प्रकार के ऋण; यथा- देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण एवं मानव जाति के ऋण से मुक्त होना। परन्तु इसका वास्तविक उद्देश्य था- व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक नियंत्रण के बीच सन्तुलन स्थापित करना।

- **संस्कार**- गौतम ने 40 संस्कारों की बात की है, परन्तु व्यवहार में 16 संस्कार होते थे, जो गर्भाधान से लेकर दाह संस्कार तक क्रियान्वित किए जाते थे। अधिकांश संस्कार द्विजों के होते थे, कुछ संस्कार शूद्रों एवं महिलाओं के भी होते थे, परन्तु वे सामान्य एवं मंत्रहीन होते थे। संस्कार के विषय में एक सामान्य परिकल्पना यह थी कि यह व्यक्ति के मस्तिष्क पर इतनी अमिट छाप छोड़ता है कि मृत्यु के पश्चात् तक इसका प्रभाव बना रहता है।

- **वर्ण एवं जाति**- भारतीय समाज में वर्ण एक आदर्श परिकल्पना बनी रही, जबकि जाति समाज का यथार्थ बन गया। भारत में जाति के विकास का एक लम्बा इतिहास रहा है जो इस प्रकार है-

वर्ण विभाजन आरम्भ में पेशे पर आधारित होता था, परन्तु 'सूत्र काल' (सातवीं सदी ई.पू.) में वर्ण विभाजन का आधार जन्म को बना दिया गया। इसके कारण वर्ण व्यवस्था के उल्लंघन का रास्ता तैयार हुआ और वर्ण संकर समूह अस्तित्व में आने लगे।

प्राय: दो कारणों से वर्ण नियमों का उल्लंघन होता था। प्रथम, निम्न वर्ण के पुरुष के द्वारा उच्च वर्ण की महिला के साथ वैवाहिक संबंध कायम होना। इसे प्रतिलोम विवाह की कोटि में रखा गया और उनकी संतान को वर्ण संकर का दर्जा मिलता था। उसी प्रकार, जब निम्न वर्ण के लोग उच्च वर्ण के लोगों के पेशे को अपनाते थे, तो फिर वर्ण संकर की स्थिति पैदा होती थी। आगे चलकर ये वर्ण संकर समूह पृथक-पृथक जाति के रूप में विकसित होते चले गए।

इसके अतिरिक्त जाति के विकास में अन्य कई कारकों ने भी भूमिका निभाई, जो इस प्रकार हैं-

1. किसी ऐसे पेशे का विकास जिसे किसी वर्ण विशेष के अन्तर्गत रखना सम्भव नहीं था, वह पृथक जाति के रूप में विकसित हो गया।
2. कुछ पेशेवर समूह एवं शिल्प श्रेणियों का जाति के रूप में ढल जाना। उदाहरण के लिए, लुहार, बढ़ई, सुनार आदि।
3. जनजातीय समूह को वर्ण विभाजित समाज में शामिल करने के क्रम में नई-नई जातियों का विकास हुआ।
4. आगे चलकर क्षेत्रीयतावाद का प्रभाव भी जाति व्यवस्था पर देखा गया और एक ही जाति, क्षेत्र के आधार पर अलग-अलग उपजातियों में ढलती चली गईं।

इस प्रकार, भारतीय परम्परा में वर्ण तो चार ही रहे, किन्तु जातियों की संख्या हजारों में पहुँच गई।

■ बुद्ध काल

इस काल में धर्मसूत्र पर टीकाएँ लिखकर वर्ण विभाजन का आधार जन्म को बना दिया गया। इससे जाति के विकास का रास्ता तैयार हुआ। इस काल में महिलाओं की सामाजिक दशा में गिरावट आई। महिलाओं को पुरुषों के अधीन कर दिया गया। सम्भवत: दहेज प्रथा का आरम्भ भी इसी काल में देखा गया। उदाहरण के लिए, मगध के शासक बिंबिसार को काशी का क्षेत्र दहेज में मिला था। यद्यपि बौद्ध एवं जैन पंथ ने अपने संघ का दरवाजा महिलाओं के लिए खोल दिया था, परन्तु इससे महिलाओं की स्थिति में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया। बौद्ध पंथ ने महिलाओं के लिए पृथक संघ बनाया और भिक्षुणियों को भिक्षुओं के अधीन कर दिया गया।

गंगा घाटी में नगरीय क्रांति तथा व्यापार-वाणिज्य में उल्लेखनीय प्रगति की वजह से वैश्य वर्ण समाज का सबसे संपन्न वर्ण बन गया था। समाज में शूद्रों की स्थिति दयनीय थी। विभिन्न प्रकार के नगरों के विकास के परिणामस्वरूप कुछ निम्न पेशेवर समूहों का उद्‌भव भी इस काल में दिखता है। इनमें अधिकांश को 'हीन जाति' अथवा 'हीन व्यवसाय' (हिन-सिप्प) माना गया है। चाण्डाल, पुक्कस, निषाद इत्यादि इसी श्रेणी की जातियाँ थीं।

■ मौर्य काल

वर्ण व्यवस्था और महिलाओं के प्रति कौटिल्य का दृष्टिकोण थोड़ा नरम है। यद्यपि एक ब्राह्मण होने के नाते कौटिल्य उच्च वर्ण के विशेषाधिकारों को सुरक्षित रखता है, परन्तु शूद्रों के प्रति वह उदार है। वह शूद्र को आर्य कहता है। उसके अनुसार शूद्र आर्य को दास नहीं बनाया जा सकता था।

उसी प्रकार, वह स्वतंत्र रूप से जीवनयापन करने वाली महिलाओं का भी जिक्र करता है और उसे 'छंदवासिनी' कहता है तथा वह गणिकाओं (वेश्या) के पेशे को भी स्वीकृति प्रदान करता है। उसके अनुसार, उससे राज्य को आय प्राप्त होती थी। इसके अतिरिक्त, धर्मसूत्र में आठ प्रकार के विवाहों में केवल चार प्रकार के विवाह, यथा- ब्रह्म विवाह, देव विवाह, आर्ष विवाह एवं प्रजापत्य विवाह को मान्यता प्राप्त थी और इसे 'धर्मेय' प्रकार का विवाह माना जाता था। परन्तु कौटिल्य ने सभी आठ प्रकार के विवाहों, अर्थात् गंधर्व विवाह, पैशाच विवाह, राक्षस विवाह एवं असुर विवाह को भी मान्यता प्रदान की।

■ मौर्योत्तर काल

यह 'मनु संहिता' का काल था। मनु ने वर्ण एवं जाति व्यवस्था के प्रति बड़ा ही कठोर रुख अपनाया। इसका कारण था कि मनु के काल में दो कारणों से जाति व्यवस्था पर दबाव बढ़ रहा था। प्रथम, बड़ी संख्या में जनजातीय तत्व वर्ण एवं जाति व्यवस्था में शामिल हो रहे थे। दूसरे, इस काल में निरन्तर विदेशी आक्रमण के कारण जाति व्यवस्था में नए तत्वों का प्रवेश हो रहा था। इसके अतिरिक्त, इस काल में एक प्रकार का सामाजिक संकट भी उत्पन्न हुआ जिसकी अभिव्यक्ति समकालीन पुराणों में कलियुग की अवधारणा के रूप में हुई है। इसका अर्थ है निचले वर्ण के लोगों का उच्च वर्ण के लोगों के विरूद्ध विद्रोह। मनुसंहिता में भी इस संकट की ओर संकेत है क्योंकि इसमें निम्न वर्ण के लोगों के विरूद्ध उच्च वर्ण की एकता की बात की गई है। अत: मनु ने वर्ण एवं जाति व्यवस्था के संचालन को ध्यान में रखकर कठोर रुख अपनाया तथा निम्नलिखित कदम उठाए-

1. मनु संहिता में वर्ण संकर जातियों की संख्या बढ़ाकर 61 कर दी गई।
2. मनु ने महिलाओं की सामाजिक दशा गिराई। उदाहरण के लिए, पहली बार इसी काल में बाल विवाह का प्रचलन आरम्भ हुआ। मनु संहिता ने विधवा विवाह पर भी पाबन्दी लगा दी। इतना ही नहीं, कुछ विशेष स्थिति में मनु ने पति को अपनी पत्नी का परित्याग करने का भी अधिकार दे दिया। फिर मनु ने महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकार से भी वंचित रखा।
3. शूद्रों के प्रति भी मनु का दृष्टिकोण कठोर है। मनु के विचार में द्विजों को शूद्रों के सम्पर्क से परहेज करना चाहिए।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि मनु संहिता ने ही परवर्ती काल की कठोर हिन्दू सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला निर्मित कर दी।

■ गुप्त काल

गुप्त काल में ब्राह्मणवादी पुनरुत्थान हुआ। इस कारण वर्ण व्यवस्था जटिल हुई और उसी के अनुरूप महिलाओं की सामाजिक दशा में भी गिरावट आई।

ब्राह्मण और क्षत्रिय विशेषाधिकार प्राप्त वर्ण बने रहे। दूसरी तरफ, वैश्यों की सामाजिक दशा में तुलनात्मक रूप में गिरावट आयी, वहीं शूद्रों की सामाजिक दशा में तुलनात्मक रूप में सुधार हुआ। इसका एक कारण था, शूद्रों का कृषि से जुड़ जाना। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में शूद्रों को कृषक कहा गया है अर्थात् पहली बार उसे कृषि का अधिकार दिया गया। फिर इसी स्मृति में शूद्रों को यज्ञ करने का अधिकार भी प्रदान किया गया।

यद्यपि गुप्तकालीन साहित्य में महिलाओं का आदर्श चित्र प्रस्तुत किया गया है, परंतु व्यवहार में महिलाओं की सामाजिक दशा में गिरावट आई। गुप्तकाल में लिखित कालिदास की रचना 'मेघदूतम्' से यह सूचना मिलती है कि उज्जैन के महाकाल मंदिर में देवदासियाँ रखी जाती थीं। इसका अर्थ है कि देवदासी प्रथा का प्रचलन था। उसी प्रकार कालिदास की रचना 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में 'अवगुंठन' शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे तात्पर्य है दुष्यंत के दरबार में शकुंतला के द्वारा अपना चेहरा ढकने का प्रयास। यह तथ्य पर्दा प्रथा की ओर संकेत करता है। सबसे बढ़कर 510 ई. के भानुगुप्त के एरण अभिलेख से सती प्रथा का प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य मिलता है। इसके अतिरिक्त, हमें यह भी सूचना प्राप्त होती है कि पाँचवीं सदी से महिलाओं का गोत्र पुरुषों के गोत्र के अनुसार बदलने लगा था। पहली बार 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में महिलाओं को सम्पत्ति का अधिकार दिया गया।

इस काल में न केवल अछूत जातियों की संख्या में विस्तार हो रहा था, बल्कि अछूत जातियों की सामाजिक स्थिति में भी गिरावट देखी गई। कुछ जातियाँ अछूतों की श्रेणी में गिर गईं क्योंकि उनके द्वारा अपनाए जाने वाले पेशों में ही गिरावट आ गई। उदाहरण के लिए, चमड़े के काम में जुटे होने वाले जाति समूह। पहली बार कात्यायन स्मृति में अछूतों के लिए 'अस्पर्श' शब्द का प्रयोग हुआ है। उसी प्रकार, फाह्यान के द्वारा चांडालों की दयनीय दशा की सूचना मिलती है।

■ गुप्तोत्तर काल एवं पूर्व मध्य काल

1. इस काल में जाति व्यवस्था जटिल होती चली गई क्योंकि जाति से उपजातियों का विकास होने लगा था।
2. वैश्यों की सामाजिक दशा लगभग शूद्रों के समकक्ष हो गई थी क्योंकि अलबरूनी नामक विदेशी लेखक लिखता है कि शूद्रों के साथ-साथ वैश्यों को भी वेदों के अध्ययन करने अथवा उसे सुनने का अधिकार नहीं है।
3. इस काल में राजपूतों के अधीन लड़कियों को स्वयंवर का अधिकार मिला था तथा महिलाओं की सम्पत्ति के अधिकार में भी वृद्धि देखी गई क्योंकि 'याज्ञवल्क्य स्मृति' पर विज्ञानेश्वर द्वारा लिखित 'मिताक्षरा' नामक टीका में महिलाओं की सम्पत्ति के अधिकार में वृद्धि की गई अर्थात् स्त्रीधन में नए प्रकार की सम्पत्ति भी शामिल की गई। वहीं, दूसरी तरफ, सामाजिक बुराई के रूप में सती प्रथा के साथ-साथ योद्धा वर्ग में जौहर प्रथा का भी आरम्भ देखा गया।

■■■